मनुष्य बनो

मार्च
१९९२

श्रवण
3/92

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २५.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

न्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि जर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना। ा साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४१	मार्च १९९२	अङ्क—६

गुरू महिमा

बिन गुरु ज्ञान को गम नहीं साधो ! ज्ञान है गुर आधारा ॥
करम भरम में जीव फँसाना, भटका बारम्बारा ।
जब गुरु मिले तो भेद बतावें, अन्तर देके सहारा ॥१॥
तीरथ वरत में भरमें प्रानी, सूझे न सार असारा ।
जब गुरू मिलें तो भेद बतावें, करै सहज छुटकारा ॥२॥
ज्ञान ध्यान की समझ नहीं है, नाहिं विवेक विचारा ।
जब गुरू मिलें तो भेद बतावें, होय जीव उपकारा ॥३॥
योग युक्ति का भरम कठिन है, दया कोई जाने गँवारा ।
जब गुरू मिलें तो भेद बतावें, यों हो हौं निस्तारा ॥५॥
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, धरा सन्त अवतारा ।
जब गुरू मिलें तो भेद बतावें, अन्तर शब्द भंडारा ॥५॥

—:०:—

॥ मनुष्य बनो ॥

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
अलख अगम और अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

परम, सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

बनकर आये परम फकीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

राम भी हो और कृष्ण भी तुम।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

सोचने समझने की बातें

(१) दिन भर यदि तुम ने कोई काम नहीं किया, केवल इतनी समझ आई कि आत्मा सब कुछ है और आत्मा में सब कुछ है तो समझ लो कि वह दिन नष्ट नहीं गया ।।

(२) संसार में चाल चलन से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। जिसका चाल चलन अच्छा है वह सब कुछ कर सकता है और उसको सब कुछ प्राप्त है परन्तु जिस का चाल चलन अच्छा नहीं है वह धनवान होते हुए भी निर्धन है। श्री रामचन्द जी से राज छीन लिया गया। वह साधु के भेष में घर से बाहर निकले। सारी सामग्री आप ही आप एकत्रित हो गई, यहाँ तक कि उन्होंने विभीषण को लंका का और सुग्रीव को किष्किन्धा का राज दिया और फिर अयोध्या में आकर राज सिंहासन को सुशोभित किया। चाल चलन की अच्छाई के अतिरिक्त इसका और कोई भी कारण नहीं। नियम बद्ध जीवन ही सब कुछ है।

(३) अपने विचारों को पवित्र करो। तुम्हारे काम आप ही आप शुद्ध और पवित्र होते जायेंगे। रैदास जी कहा करते थे–'मन चंगा तो कठौती में गंगा' और यह वास्तव में सच भी है।

(४) रोने झीकने से तुम्हारे दुःख दूर न होंगे किन्तु काम और प्रयत्न करने ही से दूर होंगे।

(५) सफलता की जड़ में दृढ़ आशा बीज रूप में छुपी रहती है। इसे समझ लो और तुम्हारा कल्याण होगा।

(६) दूसरों के वश करने का ध्यान छोड़ो। केवल अपने आप को वश में करो फिर सारा संसार मुट्ठी में आ जायेगा। लोग

॥ मनुष्य बनो ॥

औरों को चेला मूँड़ते रहते हैं परन्तु अपने आप आपको शिष्य नहीं बनाते। यदि अपना मन वश में आ जाय तो सारा जगत् अपना हो जावे।

मन ही को परबोधिये, मन हीं को उपदेश।
जो यह मन वश आवई, तो शिष्य होय सब देश॥

(७) अपने आदर्श के अनुसार अपने जीवन और स्वभाव को बनाओ। तुम आप आदर्श बन जाओगे।

(८) तुम केवल औरों ही के विचार को अपना अङ्ग सङ्ग न बनाओ किन्तु अपने आप भी नये नये विचार सोचा करो क्योंकि जो लोग औरों के झूठे विचारों ही को अपना आधार बनाते हैं वह अशुद्ध और अपवित्र हैं। तुम भी तो कुछ हो! फिर औरों की झूठी पत्तल क्यों चाटते हो? पुस्तकों का पढ़ना छोड़ो। अपने मन के ग्रन्थ को पढ़ा करो नहीं तो तुम कभी संतुष्ट न होगे।

(९) यदि तुम अपने आपको बदलना नहीं चाहते तो शीघ्र ही मर जाओगे। याद रक्खो परिवर्तन संसार का अटल नियम है। जो आज है कल नहीं रहेगा। फिर तुम अपने में परिवर्तन क्यों नहीं करते? तुमको नित्य ही उन्नति की ओर बढ़ना चाहिये। यत्न करो, प्रयत्न करो और अन्त में तुमको वह जीवन प्राप्त होगा जो नाशवान नहीं है और जो परिवर्तन के स्थल से बहुत ही ऊँचा है परन्तु जब तक तुम इस स्थल से सम्बन्ध रखते हो तुमको नित्य ही अपनी दशा की निरख परख करते हुए आगे की ओर बढ़ना चाहिये। इसको समझो और तुम्हारा कल्याण होगा।

सुमति की महिमा

एक लोहार हाथ में लोहे का बसूला लिये हुये जंगल में किसी वृक्ष के काटने के लिये आया। इस पर पक्षी गण बैठे कुलेल कर रहे

थे। लोहार को देखकर घबराये। वृक्ष ने उन्हें चिन्ता में देखकर कहा, 'तुम कुछ भी सोच मत करो। जब तक मेरी टहनियाँ, शाखायें और तने एक साथ गुथे हुए हैं तब तक कोई मुझको काट नहीं सकता और न किसी को ऐसा साहस हो सकता है। तुम अचिन्त रहो।" लोहार भी बड़ा चतुर था। उसने वृक्ष की बात सुनकर मन में सोचा और बसूले के दस्ते के लिये उसी समय एक डाली काट ली। तब वृक्ष ने कहा, 'पक्षियो! अब तुम उड़ जाओ। अब कुशल नहीं है क्योंकि हमारा अपना अङ्ग हमारा शत्रु बन गया। हमारे घर में फूट पड़ गई! अब हमारी जड़ अवश्य कट जायेगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है' ऐसा ही हुआ। दम के दम में विशाल वृक्ष बसूले की चोट से घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इसी प्रकार जब किसी जाति की जनता जातीय संगठन में एक दूसरे से मिली जुली रहती है तब तक उसे किसी शत्रु का भय नहीं रहता परन्तु जहाँ इनमें से एक के भी हृदय में लालच, ईर्षा और द्वेष ने घर कर लिया और फूट पड़ गई फिर इसको अपने जीवन के लाले पड़ जाते हैं।

यदि विभीषण के हृदय में रावण को नीचा दिखाने का विचार न उत्पन्न हुआ होता तो राम को लङ्का पर विजय प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। वह शत्रु दल से जाकर मिल रहे और सोने की लंका मिट्टी में मिल गई। उस समय से हिन्दुओं में यह कहावत चली आ रही है—
"घर का भेदी लंका ढावे।" कबीर साहब का वचन है:—

'यक लख पूत सवा लख नाती।
ता रावण घर दिया न बाती॥

।। मनुष्य बनो ।।

लंका सा महल समुद्र सी खाई ।
ता रावण की सुधि नहीं पाई ।"

गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी है :—

"जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुसति तहाँ विपति निदाना ।।"

चाल चलन

यदि धन द्रव्य गया तो कुछ भी चिन्ता न करो, यदि स्वास्थ्य बिगड़ गई तब भी सोच मत करो परन्तु यदि चाल चलन बिगड़ गया तो समझो कि तुमने सब कुछ खो दिया । धन द्रव्य फिर हाथ न आ सकता है । स्वास्थ्य भी औषधि के सेवन से ठीक हो सकता है परन्तु चाल चलन का गिरा हुआ मनुष्य संभल नहीं सकता क्योंकि वह न केवल औरों की दृष्टि से गिरा रहता है किन्तु वह स्वयं अपने आपको तुच्छ और हेटा समझने लगता है ।

हमारे शास्त्रों ने लिखा है कि जिसका अपमान लोग किया करते हैं सम्भव है वह सँभल जाये परन्तु जो अपनी दृष्टि में आप गिरा हुआ है उसको बहुत दिनों तक आवागमन के अथाह सागर में गोता खाना पड़ेगा तब जाकर वह शुद्ध होगा ।

इसलिये ध्यान रक्खो—यदि सांसारिक धन द्रव्य जाता हैं तो चिन्ता मत करो । अपने चाल चलन को ठीक रक्खो फिर तुम सब कुछ प्राप्त कर लोगे । यदि यह बिगड़ गया तो समझ लो कि सब कुछ हाथ से जाता रहा ।

उदाहरण

किसी अंग्रेजी कारखाने में एक क्लर्क नौकर था । मालिक ने उससे कहा, "रविवार के दिन आकर काम करो क्योंकि परमावश्यक काम आन पड़ा है ।" उसने उत्तर दिया, "यह दिन मैंने ईश्वर की पूजा सेवा के लिये निर्दिष्ट कर रक्खा है । आप इस विषय में कृपया मुझे क्षमा कीजिये ।" मालिक को बहुत ही बुरा लगा परन्तु चुपचाप

रह गया। एक दूसरे अवसर पर कचहरी में गवाही देने का काम आ पड़ा। क्लर्क सच्ची बातें जानता था। उसने झूठ बोलने से इन्कार कर दिया। अब तो उसका मालिक बहुत ही घबराया और उसने क्रोध में आकर इसे अलग कर दिया।

क्लर्क बहुत ही निर्धन था। उसने नौकरी की चिन्ता नहीं की परन्तु झूठ बोलने से वह कतराता रहा। वह कुछ दिनों तक बेकार घर बैठा रहा। ईश्वर दयालु और कृपालु हैं। एक बड़े कारखाने के मालिक ने इस पुराने मालिक से एक सच्चा और ईमानदार क्लर्क माँगा। यह अपने मन में अप्रसन्न तो अवश्य था परन्तु हार मान कर इसने लिखा कि इसके जीवन में केवल एक ही मनुष्य सच्चा और धार्मिक मिला जो केवल अपनी सच्चाई और ईमानदारी के कारण नौकरी से अलग कर दिया गया था।

इस पत्र व्यवहार का परिणाम यह हुआ कि नौकरी इसको मिल गई और थोड़े ही दिनों में अपने नये मालिक का विश्वासपात्र बन गया और अपने कारोबार में सच्ची और पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली।

संसार में परीक्षा समय बराबर आता रहता है। तुम इन परीक्षाओं में पूरे और सच्चे उतरने का यत्न करो। दुःख और आपत्ति की कुछ भी चिन्ता न करो। यदि तुम शुद्धात्मा और सच्चे हो तो संसार अवश्य तुम्हारा सन्मान और सत्कार करेगा। अच्छे चाल चलन का मनुष्य सामग्री न रखते हुये भी अपनी सफलता का यत्न कर लेता है। तुम भली भाँति देख लो कि जब तक मनुष्य अपने सद्विचार पर आरूढ़ रहने का साधन नहीं कर लेता तब तक वह सच्चा शूरवीर और अभय नहीं हो सकता। भीष्म पितामह का जीवन प्रशंसनीय है। इनका असली नाम कुछ और था। भीष्म प्रतिज्ञा करने के कारण उनका ही भीष्म हो गया और जीवन पर्यन्त अपनी प्रतिज्ञा पर आरूढ़ रहे। यही कारण है कि उनका नाम आज तक आदर और सन्मान के साथ लिया जाता है।

प्रेम धारा से :

मुझे झुकना तो आता है, झुकाना तो नहीं आता ।
मुझे सहना तो आता है, सताना तो नहीं आता ।१।

शुरु से ही मेरी खसलत, बनाई ईश्वर ने ऐसी ।
दिलों से प्यार करता हूं, दुःखाना तो नहीं आता ।२।

गुरु की मुझ पै बखशीश है, यह क्यों इसको वह जाने ।
उठाना मुझको आता है, गिराना तो नहीं आता ।३।

मुसीबत सब पै आती है, पैगम्बर और अवतारों पर ।
उन्हें शुक्राना आता है, चिल्लाना तो नहीं आता ।४।

हमारे जिस्म में सत्लोक, और सत्पुरुष रहते हैं ।
हम उनकी बातें करते हैं, वहाँ जाना नहीं आता ।५।

लिया है नाम जब से मैं, आवाजें अजब आती है ।
मुझे सुनना तो आता है, सुनाना तो नहीं आता ।६।

पड़े जो रुह पर पर्दे उठाये कौन बिन मुर्शिद ।
यह मुश्किल है गुरु हमको, बनाना तो नहीं आता ।७।

पुजारी ना व्यापारी हैं, मुनाफाखोरी आदत है ।
गुरु धन लूटना चाहते, लुटाना तो नहीं आता ।८।

हमारे घट में जो बैठा, हमें करता इशारे हैं ।
इशारा समझ लो 'गाफिल' बताना तो नहीं आता ।९।

धन्यवाद !

महिला सत्संग केन्द्र, काशीपुरी, भीलवाड़ा ने मनुष्य बनो के सहायतार्थ 300/- रु० भेजा है । हम उनका इस शुभ कार्य के लिये आभार प्रकट करते हैं ।

—सम्पादक

गतांक से आगे :

उसी तरह इसे भी पचाते चलो ताकि शक्ति आती चले और तुम बलवान हो जाओ।

इसी प्रकार और भी कई विघ्न बताये जा सकते हैं मगर विषय लम्बा नहीं करना है। अभ्यासी अगर अपने निजी अनुभव से लाभ प्राप्त करके सँभला हुआ रहे तो उसको लाभ होगा और यदि व्यर्थ बातों में पड़ गया तो फिर वह अपनी हानि आप ही करेगा। चाहे फिर अभ्यास करके सँभल जाये मगर पछड़ जायगा। और भी इसी तरह समझलो।

०—०—०

योग साधन के सम्बन्ध में नाना प्रकार के लाभदायक अनुभव

बचन १३७

रचना

अभ्यास में सुरत का सिमिटाव उसी तरह हुआ करता है जिस तरह मरते समय शरीर के रग-रग और रेशे रेशे से जीवन की धार खिच कर ऊपर की तरफ चली जाती है। धार का सिमिटाव मृत्यु की दशा के समतुल्य है तो धार का फैलाव भी रचना के समतुल्य होना चाहिये और वह ऐसा ही है।

ऊपर के बचनों में दूसरे प्रकार से बताया गया है कि मरना जीना और सृष्टि और प्रलय उसी तरह पर होती है, जिस तरह प्राणी की साँस आया जाया करती है। साँस का आना जीवन और साँस का जाना मृत्यु है। यह रचना का प्राकृतिक कर्म है जो हर मन्डल के प्राणी में मौजूद है और ब्रह्म तक की यही दशा है। वृक्ष, कंकड़, पत्थर, वायु, जल

सबकी साँस में सिमिटाव और फैलाव हुआ करता है। यह साधारण सी बात है और इसी साधारण बात के वर्गमूल में कल्प-कल्पान्तर, युग-युगान्तर, मन्वन्तर और हमारे जीवन के वर्ष, महीने, दिन और पल पल शामिल हैं। जीवन और कुछ नहीं है केवल बाहर की तरफ फैलने वाली एक लम्बी साँस है जिसमें अनगिनत वर्ष दिन और पलों की साँसें शामिल हैं। मृत्यु और कुछ नहीं है। वह केवल बाहर की ओर से मुड़कर अन्दर की ओर सिमिटने वाली एक लम्बी साँस है जिसमें अनगिनत वर्ष, दिन और पलों की साँसें शामिल हैं।

विचार करने पर यह ऐसा ही समझ में आयेगा और उसके ऐसी समझ आने से बहुत सी बातों के समझने में सुगमता होगी और मौत का भय हृदय से किसी सीमा तक जाता रहेगा। हमारा उद्देश्य न जीवन है न मृत्यु है। हमारा उद्देश्य न संसार का दुख है न सुख है और संसार का ज्ञान है न अज्ञान है। बाल बच्चे, आदर अनादर, उन्नति अवनति यह जीवन मार्ग के समान कहे जा सकते हैं जो अनुभव करने में सहायक होते हैं लेकिन इनमें एक वस्तु भी हमारी इष्ट वस्तु नहीं है। वह बना लिये जा सकते हैं। इस वजह से दुख और सुख दोनों ही उनके साथ लगे रहते हैं। गाड़ी के दो पहिये आगे पीछे फिरते हुये चले जा रहे हैं। पहियों के आगे पीछे की गति कौन देखा करे। वह बढ़ते चले जा रहे हैं। केवल उसी बढ़ाव की ओर दृष्टि रहती है और हमारे जीवन में भी ऐसा ही होना चाहिये।

जन्म मरन, सोना जागना, चेत और अचेत पना, यह सब उसी कुदरती साँस के आने जाने के अनगिनत प्रतिविम्बित रूप हैं जो हर जगह गहरी दृष्टि से देखने पर देखे जा सकते हैं।

जब यह दशा है तो समझ लेना चाहिये कि रचना भी बिलकुल इसी तरह बनती बिगड़ती है।

हमारे सिर की ओर से धार उतरकर शरीर (पिंड) में फैल गई और हम जाग्रत का व्यौहार करने लगे। शरीर (पिंड) से धार सिमिट कर फिर सिर की ओर चली गई और हमारे जाग्रत का व्यौहार बंद हो गया। यह जीवन का दैनिक प्राकृतिक कर्म है। इसी तरह जब इस रचना में उसके सिर की ओर से धार उतर कर ब्रह्मांड में फैल जाती है, तो ब्रह्मांड का खेल होने लगता है और जब वह सिमिटि जाती है तो यह खेल बन्द हो जाता है मगर यह बन्द होना सदा के लिये नहीं होता। प्रवाह के रूप में उसका सिलसिला साँस के आने जाने के रूप में बराबर इसी तरह चालू रहता है, जिस तरह हम अपने जीवन में नित्य प्रति जागते सोते तथा सौ सौ बरस बाद जन्मते और मरते हैं। इसके सिवा यह खेल और कुछ भी नहीं है। इस विषय का अन्तिम सार या परिणाम यही है। अब उसको चाहे तुम जितना लम्बा करना चाहो करो और उस पर तर्क वितर्क करते रहो। उसमें पड़ने की आवश्यकता यहां नहीं है, क्योंकि इसके सम्बन्ध की बातों को यदि फैलाया जाय तो बहुत बढ़ जायेगी और कहीं ठहराव की सूरत दिखाई न देगी। यह विज्ञान और दर्शन केवल हमारी ही बुद्धि की छाया हैं। छाया के पीछे दौड़ो तो वह भी दौड़ती चलेगी। तुम खड़े हो जाओ तो वह भी खड़ी हो जायेगी। तुम मुड़ चलो तो वह भी मुड़ चलेगी। छाया तो छाया ही है। छाया को किसने आज तक पकड़ा है। हाँ छाया से विचारों का फैलाव होता है। उसको समय समय पर जानते हुये उससे काम लिया जा सकता है मगर छाया छाया ही है। इससे अधिक उसका मूल्य नहीं है।

राधास्वामी मत इस दृष्टि से केवल सिद्धान्त को समझा कर तर्क वितर्क को छोड़ देता है। जिसका जी चाहे वह इनमें दिलचस्पी ले। किसी को रोकने का उद्देश्य नहीं है। हाँ, जो लोग अध्यात्म के प्रेमी हैं, उनको चेता दिया जाता है कि अगर इस जीवन में तुम साक्षात्कार करना चाहते हो तो दर्शनशास्त्र के झगड़े में न पड़ो। इससे बहक जाओगे। शान्ति नहीं मिलेगी और करोड़ों में से केवल दो चार इसके सच्चे अधिकारी निकलते हैं। उनको अपना काम करने दो। वह भी रचना की जंजीर में जरूरी कड़ी हैं। केवल अपना काम बनाओ और उनके अनुभवों का सार लेकर संत मत के उद्देश्य की ओर ध्यान दो; क्योंकि यह संत मत स्वयं इन दर्शन और विज्ञान की जान है। इसकी समझ भी हर व्यक्ति को नहीं है। जिन्होंने सत्संग करके सार को समझ लिया है केवल वही लोग इसको सही और सच्चा स्वीकार करेंगे।

रचना की केवल यह स्थिति है।

वचन १३८

रचना (लगातार)

रचना किस तरह होती है यह लगभग बहुत से आदमी जानना चाहते हैं। उनकी यह इच्छा बुरी नहीं है। अभ्यास करने वालों को यदि यह किसी हद तक समझ में आ जाय तो उनके साधन में सहायक भी हो सकती है।

जीवन मृत्यु के विपरीत है और रचना प्रलय के विपरीत है। मृत्यु और जीवन तथा सृष्टि और प्रलय दोनों ही एक दूसरे के विपरीत हैं। यदि मृत्यु और प्रलय की घटनाओं को ध्यान से देखा जाय तो जीवन और सृष्टि के भेद का पता मिलना सुगम हो जाता है।

जीवन कई तरह का है और रचना भी कई तरह की है। मृत्यु भी कई तरह की है और प्रलय भी अनेक प्रकार की है। जाग्रत जीवन और जाग्रत प्रलय हमारा रोजाना का व्यौहार है। जब हम जागते है तो यह रोजाना व्यौहार का जीवन है। जब हम सोते हैं तो यह जीवन की जाग्रत अवस्था को मृत्यु है।

सौ बरस जीकर हम मरते हैं। सौ बरस जीना जीवन और सौ बरस जी कर मर जाना शरीर यानी पिंड की प्रलय है। एक प्रलय यह हुई।

ब्रह्मा के रोजाना जीवन के अन्दर मालुम नहीं हमारे कितने जन्म मरण और सृष्टि प्रलय हुआ करते हैं। जब ब्रह्मा के सौ बरस के जीवन के बाद उसका हमारे शरीर जैसा हाल हो जाता है तो उसे ब्रह्माँड की प्रलय कहते हैं। यह दूसरे शरीर की प्रलय है और भी इसी प्रकार।

पहिले पिंड प्रलय हाल राधास्वामी मत की पवित्र वाणी (सार बचन छंद-बंद—हाल उत्पत्ति और प्रलय) की शिक्षा के अनुसार सुनो :—

काल किया जब तन परवेश। जीव चला तज यह परदेश ।।
मूल द्वार पृथ्वी का बास। खिचा वहां से स्वांस और भास ।।
खिचकर आया इन्द्री द्वार। वहाँ से पहुँचा नाभि मँझार ।।
नाभी से खिच हिरदे आया। हिरदे से फिर कंठ समाया ।।
पृथ्वी-जल-अग्नि और पौन। कंठ माँहि रुँधन लगी होन ।।
चारों तत्व भास और स्वांस। यहाँ से चले खिचे आकाश ।।
दोऊ दल कमल काल के देश। कर्म अनुसार खान परवेस ।।
इस विधि काल जीव को खाय। जन्मे मरे बहुत दुख पाय ।।
सतगुरु बिन नहिं लगे ठिकाना। ताते सतगुरुशरण समाना ।।

जब कोई मरने लगे तो उसकी दशा को देखो और—

रहस्य हल हो जायगा। धार ऊपर से आकर पहले गुदा चक्र में ठहरी थी। गुदा चक्र स्थूल पृथ्वी का इस पिंड (शरीर) में स्थान है। इसलिये मृत्यु की कारवाई यहाँ से शुरू होती है। मरते समय गुदा से पृथ्वी का तत्व खिचकर इन्द्रिय चक्र पर आकर जल में लय हो जाता है, क्योंकि इन्द्रिय का स्थान जल तत्व की जगह है। जल से पृथ्वी उत्पत्ति हुई थी और इस कारण से मरते समय पृथ्वी को जल में आकर लय होना पड़ता है। यह जल तत्व खिंचा और खिचकर नाभि के स्थल पर आकर अग्नि में लय हुआ। जल की उत्पत्ति अग्नि से हुई थी। इस कारण उसका उसमें आकर लय होना प्राकृतिक कर्म है। अब इस अग्नि तत्व का खिचाव वायु में हुआ और वह हृदय चक्र के वायु तत्व में आकर लय हो गया, क्योंकि अग्नि की उत्पत्ति वायु ही से हुई थी। हर वस्तु अपने अपने असल की ओर मरते समय खिचती है। हृदय चक्र वायु तत्व का स्थान है। यहाँ तक तो चार तत्व का खिचाव हुआ। अब यह वायु तत्व हृदय चक्र को छोड़कर कंठ चक्कर में आया। कंठ चक्र आकाश का स्थान है। आकाश ही से वायु पैदा हुई थी। वायु का आकाश में समाना इस दृष्टि से आवश्यक था। नीचे के चार तत्व आकाश से मिलकर एक हो गये। अब वह आकाश के रूप हो गये। अपने अपने नाम व रूप को छोड़कर अब वह उस आकाश के नाम और रूप में मिल रहे। यह पिंड के मरते समय उनकी दशा होती है। यह आकाश तत्व फिर अपनी बारी पर खिचकर काल तत्व के स्थान पर पहुँचा जो दो दल कमला यानी पुरुष और प्रकृति की मिली जुली सूरत है। यहाँ आकर फिर जीव को अपने कर्म और वासनाओं के अनुसार इस मृतक शरीर को छोड़कर नई योनि में आने की आवश्यकता हुई, क्योंकि अंत मती सो गती। जहाँ आशा तहाँ

बासा । जीव ने जैसे जैसे कर्म किये थे और वासना, उसकी प्रबल हुई थी, उसी तरह के नये शरीर में जाना उसके लिये आवश्यक है । वासना ही जन्म का कारण होती है और योनी में लाती है । जैसी वासना होगी वैसी ही योनि मिलेगी और यह सिलसिला बराबर उस समय तक चलता रहेगा, जब तक गुरु का सत्संग करके जीव वासना के मैल को अपने अंदर से नहीं निकालेगा । अभ्यास और सत्संग का यही उद्देश्य है । इसके सिवा और कोई उद्देश्य नहीं है ।

पिंड की मृत्यु का नक्शा दिखा दिया गया । इसके सच होने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है । अब इसी को अगर उलट कर देखो तो जीव की पिंड रचना का भेद तुम्हारी समझ में आ जाये ।

काल में समाया हुआ जीव अपनी वासना को अपने में लिये हुए था । उसके आधीन वह पहिले उससे निकल कर इस पिंड में आया और पिंड के आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के स्थानों पर अपना आसन जमाया और इस पिंजरे में आकर बन्द हो गया । वह जिस तरह आया था उसी तरह उसको इससे निकलना पड़ता है और उसी तरह कर्म के नियम आधीन उस समय तक वह बराबर आता जाता रहेगा, जब तक एक वासना भी उसके अन्दर रहती है ।

यह मृत्यु पिंड प्रलय कहलाती है और यह बार बार सौ-सौ बरस के बाद आती रहती है । कभी कभी आयु कम भी हुआ करती है । यह उसके कर्म और वासना की वजह से है जिसकी व्याख्या लम्बी है । कोई आदमी कोई प्रबल वासना लाता है । उसकी आयु सौ बरस की होती है । किसी की वासना कमजोर होती है । वह पैदा होते ही विशेष मंडल के

कर्म और वासना को भोग कर जल्द मर जाता है। फिर दूसरे कर्म और दूसरी वासनाओं के आधीन दूसरा शरीर धारण करता है। और भी इसी प्रकार समझलो।

बचन १३६

रचना (लगातार)

पिंड प्रलय के समझ लेने पर ब्रह्मांड प्रलय की अच्छी तरह से समझ आयेगी। यहां हम फिर राधास्वामी मत की बाणी उद्धृत करते हैं, क्योंकि उसके शब्द अधिक स्पष्ट और प्रभाव शाली हैं :—

अब प्रलय का भाखूं लेखा। जस सिमिटाव जगत का देखा ॥
काल धाय जीवों को ग्रासा। जीव समाने काल के स्वाँसा ॥
देही कारज पृथ्वी होई। पृथ्वी ने गिरसी पुनि सोई ॥
पृथ्वी घोली जलने आय। जल को सोखा अगनी धाय ॥
अगनी मिली पवन के रूप। पवन हुई आकाश स्वरूप ॥
आकाश समाना माया माँहि। तम रूपा दीखे कुछ नाहिं ॥
माया रिली ब्रह्म में जाय। शक्ति शिव में गई समाय ॥
शिव पहुँचे ओंकार मंझार। ओंकार समाने सुन्न के द्वार ॥
सुन्न किया महा सुन्न निवास। भँवर गुफा महा सुन्न का बास ॥
यहाँ तक प्रलय कभि कभि होई। सत्त लोक का द्वारा सोई ॥
प्रलय गति आगे नहिं भाई। सत्तलोक में कभी न जाई ॥
काल त्रिलोकी कीन्हीं नास। महा काल पुनि काल गिरास ॥
महाकाल पहुँचा सत द्वार। आगे गति नहिं ठिठका बार ॥

यह ब्रह्मांड प्रलय का नकशा है, जो पिंड प्रलय से बहुत मिलता है। इस बाणी की संक्षिप्त व्याख्या भी इतनी लम्बी हो जायगी कि अगर कोई इस विषय पर लिखना चाहे तो पुस्तक की पुस्तक लिख सकता है। पृथ्वी का प्राकट्य चूंकि

इतना है कि प्रलय का अनुमान जगत के सिमिटाव की ओर देखकर लगाया जा सकता है। पृथ्वी का प्राकट्य चूंकि जीवों की देह की दृष्टि से हुआ था और यह देह पृथ्वी ही से बना हुआ है, यह पृथ्वी में मिल गया। पृथ्वी पानी की सूरत में बदल गई। पृथ्वी का पानी की सूरत में बदल जाना जल प्रलय है। जब जल प्रलय आजाता है, उस समय दुनियाँ में जल ही जल हो जाता है और मिट्टी की तमाम शक्लें बिगड़ बिगड़ कर पानी बन जाती हैं। फिर इस पानी को अग्नि सोख लेती है और पानी नष्ट होकर अग्नि ही अग्नि रह जाती है। यह अग्नि प्रलय है। अग्नि-प्रलय में पृथ्वी और जल का कहीं नामो निशान तक नही रहता। फिर अग्नि अपनी बारी पर वायु में बदल जाती है। यह वायु प्रलय है। वायु प्रलय में पृथ्वी, जल और अग्नि में से किसी का भी नामो निशान नहीं रहता। तब यह वायु भी आकाश में लय होकर उसका रूप बन जाती है और चार तत्वों में से एक का भी पता नहीं रहता। यह आकाश प्रलय है। यह आकाश भी चूंकि तत्व है और माया से पैदा हुआ है, यह माया में समा जाता है। और माया अंधकार की तरह छाई रहती है। अंधकार अंधकार को इस प्रकार ढक लेता है कि कुछ दिखाई नहीं देता। दिखाई भी कैसे देता ? देखने के सामान तो पहिले ही से नाश हो जाते है। इसका नाम माया प्रलय है। फिर यह माया ब्रह्म में समा जाती है। ज्योति और निरंजन मिलकर एक हो जाते हैं और ओंकार कहलाते हैं। ओंकार सुन्न और महासुन्न की दशा को प्राप्त होकर भँवर गुफा तक आकर ठिठक जाता है, क्योंकि यहाँ तक ही नाश और परिवर्तन सम्भव है। आगे सत् लोक में जो सत् ही सत् है प्रलय नहीं होती। सत् जैसा है वैसा रहता है। उसी तरह वह अपनी दशा में रहता है और यही इष्ट पद है।

जिस तरह प्रलय होती है, उसी तरह अगर उसकी धार को दूसरी सूरत में देखना शुरू करो, तो रचना की सूरत का दृश्य बुद्धि के सामने स्वयं आ जाता है।

इस पर विचार करने से यह मालूम होता है कि पहले सत ही था। इस सत् से महाकाल और काल पैदा हुये। उन्हीं से माया प्रगट हुई। माया ने आकाश पैदा किया। आकाश से वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति हुई और फिर पिंड की रचना हुई, जिसमें जीव बँध गया और वासना वश उसी में फँसा हुआ मरता खिपता रहता है।

वचन ४०

सुरत शब्द का मार्ग

बिना सत्संग किये हुये फिर भी ज्यों का त्यों इन बातों का बाह्य ज्ञान भी नहीं होता। आपत्ति पर आपत्ति की जा सकती है क्योंकि इस तरह समझना कि जब आकाश नहीं रहा, माया नहीं रही, ओंकार पद का भी अभाव हो गया तो फिर किसी को आगे का ज्ञान कैसे हो सकता है।

बिना गहरी समझ के यह बिल्कुल असम्भव ज्ञात होता है और ऐसा कहना और ख्याल करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है परन्तु यह ज्ञान हो जाता है और सुरत शब्द का अभ्यास करने से सुरत इनका साक्षात्कार करती हुई जाती है वर्ना किस तरह ज्ञान होता! ऋषियों ने भी तो उपनिषदों में इसी प्रकार की वाणियाँ कही हैं। "अंधकार ने अंधकार को ढक रक्खा था। न कोई उसे सत कह सकता था और न असत आदि आदि।" यह अनुभव का विषय है और जब तक आदमी साधन सम्पन्न अनुभव सम्पन्न न हो जाये तब तक वास्तव में इन बातों को समझना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है। इस लिये जीवों को साधन करने का आदेश

किया गया। साधन की विधि वाणी में इस तरह आती है :—

सत गुरु कहें भेद दरसाई। मारग घर का देयँ बुझाई॥
प्रथम शरण गहो सत् गुरु की। दुतिये बाड़[1] धरो सत् संग की॥
गुरू जो भेद बतावें तुमको। धारो बचन कमाओ उनको॥
तन मन इन्द्री सुरत समेंटो। चढ़ अकाश शब्द गुरु भेंटो॥
सुनो नित्य तुम अनहद बाणी। देखो अद्भुत जोति निशानी॥
जोति फाड़ फिर सुन्न समाओ। सुषमन होय बंक में जाओ॥
बंक पार त्रिकुटी सुन गीत। काल कर्म दोऊ लीन्हे जीत॥
सुन्न शिखर चढ़ी सूरत घूम। मान सरोवर पहुँची झूम॥
महा सुन्न जहां अति अंधियार। गुप्त चार धुन वाणी सार॥
भँवर गुफा जाय लीन्ही चीन्ह। आगे सत्त लोक चढ़ लीन्ह॥
अलख अगम कों जाकर परसा। शब्द पकड़ मन सूरत सरसा॥
राधास्वामी नगर निहारा। देखा जाय अगर उजियारा॥

संतन का मत गूढ़, बिना संत को जानई।
राधास्वामी किया जहूर, माने सत्संगी कोई॥

बचन १४१

रचना के स्थान

जिन स्थानों का बचन १४० में वर्णन आया है वह ब्रह्माँड और ब्रह्माँड के परे दयाल देश के हैं। जिस तरह पिंड में षट चक्र हैं, वैसे ही काल देश यानी ब्रह्मांड और दयाल देश यानी शुद्ध आत्मिक मंडल में भी हैं। ब्रह्मांड में भी छः चक्र हैं और दयाल देश में भी। और इनकी रचना में वही व्यापक सिद्धान्त प्रभाव डालता है जो इस माया देश में है।

समझाने बुझाने की दृष्टि से हम फिर एक बार विभिन्न प्रकार से उसी बात को उदाहरण के रूप में यहां वर्णन करते हैं जैसे कि पहिले भी बता चुके हैं।

इस तरह समझो कि आकाश में क्षोभ हुआ और क्षोभ होने की वजह से आकाश ने अपने अंदर का वह भाग जिसमें स्थूलता थी मथकर फेंक दिया, जो वायु का मंडल बन गया। और जो हिस्सा कि बिलकुल सूक्ष्म था वह शुद्ध आकाश बना रहा। इन दोनों मंडलों ने स्थूलता और सूक्ष्मता के होते हुये भी परस्पर मेल है। और वायु मंडल में जिस भाग को आकाश की सूक्ष्मता के साथ सम्बन्ध है, वह उससे निकट है और दूसरे भाग धीरे २ दूर होते गये हैं। इस तरह वायु आकाश से गुथा हुआ भी रह गया। फिर वायु के मथन से उसका स्थूल भाग जो फेंका गया वह अग्नि बना और अग्नि से जल और जल से पृथ्वी इसी तरह बनती गई। वह आकाश ही है जो पृथ्वी है मगर पृथ्वी आकाश का महा स्थूल रूप है। यह पाँचों मडल अलग अलग होते हुये भी परस्पर गुथे रहते हैं। इनमें समेटने और फेंकने की शक्ति उसी तरह काम करती रहती है, जिस तरह तुम अपने भोजन के मामले में आवश्यक और सूक्ष्म भाग शरीर का अंश बनाते रहते हो और स्थूल भाग को मल के रूप में बाहर करते हो। जहाँ कहीं सृष्टि की व्यवस्था में जिस कारोबार को तुम देखोगे यह सूक्ष्म और स्थूल श्रेणी, उनकी सूक्ष्मता और स्थूलता के कारोबार और कारोबार के सिलसिले में समेटना और बाहर फेंकने का यही नियम काम करता हुआ दिखाई देगा। हर वस्तु बदलकर बहतर बनना चाहती है। बहतर यानी सूक्ष्म बनकर वह ऊपर खिचती है। उसका बदतर यानी स्थूल भाग स्वयँ नीचे गिरता रहता है। और जब तक कि प्रलय नहीं आ जाती यह बराबर जारी रहता है। इसी के व्यवहार में विभिन्नता की सूरतें दृष्टि में आया करती हैं।

जो बात तत्वों की बाबत कही गई है, वह रचना के

मंडलों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये।

आदि में (जिसे हम आदि भी नहीं कह सकते) क्षोभ हुआ। क्षोभ के होते ही जो शुद्ध और सूक्ष्म आत्म तत्व था, वह तो आत्मिक मंडल में रह गया और जिसमें स्थूलता भी वह मथ कर नीचे उतरा और काल देश यानी ब्रह्माँड में ठहरा। फिर ब्रह्माँड में उसी क्षोभ के प्रभाव से अपनी बारी पर उसने जो स्थूल भाग को फेंका तो वह नीचे आकर ठहरा और उसी से वह माया देश बन गया, जो अत्यन्त स्थूल है। आत्मिक मँडल (दयाल देस) अत्यन्त सूक्ष्म, ब्रह्मांड (काल देश) सूक्ष्मता और सूक्ष्म स्थूलता की मिलौनी है और माया देश बिल्कुल ही स्थूल है।

चूँकि यह एक प्रकार से रचना का व्यापक नियम है, वह दुनियाँ के बारोबार में भी मौजूद है। जाति पांति, वर्णाश्रम आदि तक में यही दिखाई देता है। ऊँचे वर्ण से नीचे वर्ण पैदा होते हैं और फिर इन ही में से जो लोग सूक्ष्म बनते हैं और वह ऊपर की ओर खिचकर बड़े होते रहते हैं और अपने में से स्थूल पदार्थ को बराबर बाहर निकालते रहते हैं। जो वस्तु जिस मंडल के अनुकूल है, वह उसी में रक्खी जाती है और जो उसके अनुकूल नहीं होती वह या तो ऊँचे चढ़ जाती हैं या स्थूलता की वजह से नीचे गिरती पड़ती रहती हैं।

अब यह विषय कुछ अंश में स्पष्ट हो गया और इसके भली प्रकार समझ लेने से यह बात समझ में बैठ जायगी कि जो प्राणी सूक्ष्म हो जाते है और जिनमें अधिक आत्मीयता आ जाती है, उनके लिये स्थूल मंडल में स्थान नहीं रहता। उन्हें आत्मिक मंडल (दयाल देश) की ओर जाना आवश्यक है और जो प्राणी स्थूल हैं वह आत्मिक मंडल में नहीं रह

सकते। उनका नीचे गिरना जरूरी है।

स्थूल जगत में स्थूल स्वभाव वालों का स्थान है। आत्मिक देश में आत्मिक स्वभाव वाले रहते हैं। आत्मिक और स्थूलता का यह चक्र हर समय चलता रहता है जिसका नक्शा हमारे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तक में और हमारे हर कारोबार में दिखाई देता है।

(१) शुद्ध आत्मिक (२) आत्मिक और स्थूल और (३) स्थूल यह तीन रचना के मंडल हैं। लेकिन स्थूल मंडल को आत्मिकता से बिल्कुल ही खाली भी न समझ लेना चाहिये, क्योंकि यदि आत्मा न हो तो फिर कारोबार का चलना असम्भव होता है। हाँ, इसमें आत्मिकता अत्यन्त थोडी है और ऊँचे के मंडल में वह श्रेणी ब श्रेणी घनी है। यह उनमें अन्तर हैं। आत्मा तीनों ही में है। पहिले में तो वह शुद्ध हैं। दूसरे में सूक्ष्म मन और माया के साथ मिली हुई है और तीसरे में वह स्थूल मन और माया के साथ मिली हुई है।

आत्मिक धार का कमी बेशी के साथ इनमें आना जाना रहता है। जो लोग आत्मिक साधन करके आत्मा की धार के साथ समता करते रहते हैं, वह तो उन्नति कर जाते है और ऊँचे चढ़ जाते हैं और जो स्थूल पदार्थ के साथ एकता करते हैं वह अवनति की हालत में पड़े रहते हैं। आत्मा के प्रेमी अत्मिक मंडल में स्थान पाते हैं। और स्थूल पदार्थ के प्रेमी स्थूल मडल में। इसमें तनिक भी संदेह नहीं। विद्या और बुद्धि के अभ्यास से जीवों की अवस्था में परिवर्तन को हर एक जातता है। विद्या और बुद्धि के अभ्यासी साधारण लोगों से कहीं अच्छे होते हैं और साधारण लोगों के स्थान में नहीं रहते या रर सकते हैं, क्योंकि इनके भाव उनसे भिन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार आत्म ज्ञान के साधक इन विद्या और बुद्धि वालो

से अधिक सूक्ष्म अवस्था प्राप्त कर लेते हैं । और इनसे भिन्न हो जाते हैं ।

सारी बात अभ्यास पर निर्भर है । शारीरिक अभ्यास करने वाला पहलवान बनकर सैकड़ों और हजारों से ऊँचा हो जाता है । विद्या और बुद्धि के कारोबार का अभ्यास करने वाला लाखो में उच्च पदवी प्राप्त करता है और आत्मअभ्यासी करोड़ों से ऊँचा हो जाता है और उसके काम का सिलसिला इस दुनियाँ में भी पहलवान या विद्वानों से अधिक समय तक रहता है, क्योंकि नित्यता केवल आत्मा में है । शरीर या बुद्धि की शक्तियों में नित्यता नहीं है । शरीर बदलता रहता है, बुद्धि भी बदलती रहती परन्तु आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता । मनुष्य की बुद्धि के कारोबार बिगड़ते रहते है, राज्य नष्ट होते रहते है परन्तु इनकी अपेक्षा में आत्मिक गुरुओं का काम दुनियाँ में अधिक समय तक स्थिर रहता है और उनके झंड के नीचे करोड़ों और अरबों आदमियों को शान्ति मिलती रहती है । उनके शरीर छोड़ जाने पर भी लोग रात दिन उनका नाम लिया करते हैं, क्योंकि रूहानियत (आत्मीयता) में विशेष प्रकार की बरकत रहती है ।

दुनिया में शारीरिक शक्ति के अभ्यास के लिये अखाड़े हैं विद्या और बुद्धि के विद्यालय भी हैं । इसके सिवा जीवन के करोबार में भी शरीर और विद्या बुद्धि का अभ्यास होता रहता है । लेकिन आत्मिक अभ्यास का अखाड़ा कहीं दिखाई नहीं आता । राधा स्वामी मत ने इस कमी को पूरी करने के लिये सत्संग और सुरत शब्द योग का अभ्यास जारी किया ताकि जिनको प्रेम हो, वह इधर आकर्षित होकर आत्मिक जीवन के साधक बनें ।

यह साधन कहीं बाहर नहीं कराया जाता किन्तु अपने

शरीर ही के अन्दर कराया जाता है। गुरू इसी शरीर में आत्मिक स्थानों का पता देकर और उनमें चढ़ाई करने का भेद बताकर अभ्यास कराते हैं जिससे उनकी अवस्था में परिवर्तन आ जाता है।

जो व्यक्ति जिस स्थान का साधन करके उसे जीत लेता है वह फिर वहाँ नहीं रह सकता और आगे बढ़ने की उसे आवश्यकता होती है और जब तक अन्तिम स्थान को तै नहीं कर लेता, तब तक वह बराबर उन्नति करता जाता है।

वचन १४२

स्थानों का ज्ञान

हमको जो कुछ ज्ञान इन स्थानों का होता है अथवा हुआ है या होगा, वह केवल परिणाम को देखकर कारण तक पहुँचने का ज्ञान है। असलियत में हम इसे पूर्ण (अखड) नहीं कह सकते। ज्ञान पूर्ण (अखंड) तो सत पुरुष राधास्वामी का नाम है। इस ज्ञान के सम्बन्ध में इन्द्रिय ज्ञान, अनुमान ज्ञान या शब्द ज्ञान के विषय में हमने पहिले वर्णन कर दिया है। यह सारा इन्द्रिय ज्ञान परिणामों को ही देखकर, मानकर या सुनकर होता है। फिर भी यह कहना कि यह बिल्कुल ही विश्वास योग्य नहीं है, ठीक न होगा। लोग बिना समझ बूझे इस जगत को मिथ्या और उसके ज्ञान को मिथ्या कहते है। यदि यह सब मिथ्या ही हैं, तो क्या ऐसे आदमियों का मिथ्या मिथ्या कहते रहना स्वयं मिथ्या नहीं होगा और मिथ्या कहने वाला मिथ्या न समझा जायगा। बात कुछ और है और लोग समझते कुछ और हैं। जिन आचार्यों ने इस जगत और इस के ज्ञान को मिथ्या कहा था, उनका यह कहना पूर्ण ज्ञान की दृष्टि से था। जिन्होंने इस जगत को मिथ्या बताया था, उनका

मंतव्य केवल इस प्रकार था कि यह जगत, यह माया, यह त्रिगुणात्मक व्यौहार, यह तत्व आदि अपने आप ही अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखते बल्कि उनका अस्तित्वपूर्ण अस्तित्व के आधीन हैं। तुममें और तुम्हारी शक्ति में भी तो अंतर है परन्तु तुम्हारी शक्ति तुम्हारे आधार पर है। तुम्हारी शक्ति तुमसे पृथक नहीं है। शक्ति को तुमसे पृथक मानना भूल है और यह पृथक मानना ही मिथ्या कहा गया है। इसके सिवा इस कहने का और कुछ तात्पर्य नहीं था, लेकिन मिथ्या कहने वाले के असली मन्तव्य को न समझ कर अकारण ही मिथ्या की हाँक लगा दी और अपने आपको अधिकतर मिथ्यावादी बना दिया, जो स्पष्ट रूप में गलती है राधास्वामी मत इस गलती से जानकारी कराते हुये आदेश करता है कि तुम इस भूल में न पड़ो। मिथ्या 'नहीं' का शब्द है। 'नही' को धारण करना भूल है। जो वस्तु इस समय तुम्हारी दृष्टि के सामने है, उस पर विचार करते चलो कि यह किसी कारण का फल है। फल को देखो ताकि कारण तक पहुँचने और उसके प्राप्त करने का अवसर मिले, जब कारण तक पहुँच हो जायगी तो फल की ओर से आप ही आप ध्यान हटा हुआ होगा। फिर उसके मिथ्या कहने की आवश्यकता ही शेष न रहेगी। यदि पहिले ही से कारण को और परिणाम को मिथ्या कहने लग गये, तो फिर कारण तक पहुँचना किस प्रकार होगा। यह तो हम भी मानते हैं कि पूर्ण पुरुष या पूर्ण अस्तित्व या पूर्ण ज्ञान को मन वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता। वह कोई ऐसी वस्तु है जहाँ इनकी पहुंच कठिन है, लेकिन परिणामों को देखकर हम उसका अनुमान कर सकते हैं।

जगत का ज्ञान परिणामों के देखने से होता है और यह ज्ञान हमारे ही भीतर है। हम परिणाम को देखकर कारण का

पता लगाने लगते हैं। यदि यह संसार न होता तो किसी प्रकार इस संसार के कारण का पता न लगता। सारा ज्ञान प्रायः नष्ट रहता। चूँकि यह दुनिया है और हममें उसके जानने की शक्ति है, इस कारण से हम उसे समझते हैं। जिनमें जानने की शक्ति नहीं है, वह उसे जानते तक नहीं।

हम इस संसार के व्यौहार में सतपना, चितपना और आनन्दपना देखते हैं। परन्तु ये विभिन्न वस्तुओं में विभिन्न श्रेणी के दिखाई देते हैं। इन सब पर दृष्टि डालकर हम अपने विचारों की जड़ स्थापित करते हैं और हमने कुछ ऊपर स्थानों के बारे में कहा है, उसका मूल इन्हीं अनुभवों पर है। हमने पिंड में षट चक्रों को देखा। उन पर विचार किया। यह स्थूल हैं। इनको देखकर उनके सूक्ष्म रूप का ध्यान आया अपने भीतर खोज की गई। मस्तिष्क की ओर चढ़ाई की। उन पर जीत मिली। जब सूक्ष्म रूप समझ में आ गया और हमारी बुद्धि भी सूक्ष्म रूप के संयोग से सूक्ष्म हो गई, तब इस पर भी हमें जीत प्राप्य हुई। अब उसके कारण का विचार आया और इसी अभ्यास से कारण का भी पता लगा। स्थूल तो सूक्ष्म की छाया है और सूक्ष्म कारण की छाया है अर्थात् कारण ही सत् है और सूक्ष्म और स्थूल इसके छाया होने के कारण से मिथ्या है। लेकिन वर्तमान व्यौहार में उनको न मानना और उनका मिथ्या मिथ्या कहते रहना यदि भूल और ना समझी नहीं है तो फिर क्या है ?

परिणामों को देखकर कारण तक पहुंचना साधारण सी बात है। और जिस पर यह कारण और परिणाम निर्भर हैं वह पूर्ण पुरुष या स्वस्वरूप है जो न सगुण है न निर्गुण है। न साकार है न निराकार है। वह क्या है ? कुछ कहा नहीं जाता यहाँ आकार यह जुबान गूंगी हो जाती है। वह जो है वह है। इससे अधिक कहने का साहस नहीं है।

बचन १४३

अभ्यास से लाभ

सुरत शब्द योग के अभ्यास का असली प्रयोजन तो निज स्वरूप या सत् तक पहुँचना है और वह निज स्वरूप न हमसे प्रथक है और न भिन्न है। भ्रम के पर्दे बुद्धि पर पड़े हुए हैं जिससे उसका अनुभव नहीं होता। अभ्यास से यह पर्दे फट जाते हैं। तब आप ही आप अनुभव हो जाता है और यही निर्वाण, मुक्ति और धुर पद है।

लेकिन इन पर्दो के हटते समय अभ्यासियों को जो लाभ अनुभव होते हैं, वह अनगिनत प्रकार के हैं। पहला लाभ तो यह है कि शरीर, मन और आत्मा में समता हो जाती है। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है इन्हीं सब बातों का एक नाम सत है। सत अस्तित्व, जीवन और प्राकट्य को कहते हैं। दूसरा लाभ यह है कि जब जब मन जिस स्थान पर ठहरता है, उस समय उसे सुख और लीनता प्राप्त होती है और लगातार अभ्यास करते रहने से इनका प्रभाव इतना गहरा और स्थायी होता है कि अभ्यास के बाद भी यह बराबर या अधिक देर तक स्थिर रहता है और जीवन प्रसन्नतो और आराम से गुजरता है। इसका नाम आनन्द है। तीसरा लाभ यह है कि अभ्यास से पर्दों के फट जाने के कारण ज्ञान और अनुभव में बृद्धि होती है और वह बराबर बढ़ता ही जाता है। उसमें कमो नहीं आती। इसका नाम चित शक्ति है। तात्पर्य यह कि मनुष्य को सत, चित, आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द की अवस्था का अनुभव दृढ़ हो जाता है और वह संसार के झगड़े बखेड़ों में रहता हुआ उन पर अपने आपको विजयी पाता है। जैसे कमल का पेड़ पानी के

अन्दर रहकर न पानी से तर होता है और न नीचे की ओर आकर्षित होता है किन्तु जल के बढ़ने से बराबर बढ़ता चला जाता है। उसी तरह यदि एक सच्चा अभ्यासी संसार के हजार झमेलों में पड़ जाय मगर यह उनके ऊपर ही रहेगा। ये झमेले उस पर विजय प्राप्त न कर सकेंगे। क्या यह लाभ कम है ?

शारीरिक आकृति और रूप में परिवर्तन, संकल्प शक्ति में दृढ़ता, बाणी का सुरीला होना, जीवन का तेजस्वी होना, परमार्थ के साथ स्वार्थ में सफलता, संसार की प्रीति के साथ त्याग आदि अनेक प्रकार की अवस्थायें प्राप्त होती हैं जिनका कोई वर्णन नहीं कर सकता।

जिस आदमी को शरीर या हृदय का रोगी देखो तो यह समझ लो कि उस अभ्यासी ने अभी तक समता के नियम का रहस्य नहीं पाया। जिसका हृदय शुद्ध पवित्र होता है, उसका शरीर भी वैसा ही हुआ करता है। शरीर मानसिक धार का जमा हुआ और स्थूल रूप है। विशाल हृदय वालों का रोगी होना आश्चर्य है और जहाँ कहीं रोग दिखाई दे तो समझ लेना चाहिये कि अभ्यासी न तो विधिपूर्वक अभ्यास करता हैं न उसके मन शुद्धता आई है।

इनके अतिरिक्त दुनियाँ जिन्हें सिद्धि शक्ति, या महात्माओं की करामात समझती है, वह मन की एकाग्रता के परिणाम हैं, किन्तु राधास्वामी मत के सत्संग में अभ्यासियों को पहिले ही से बता दिया जाता है कि अभ्यास का यह प्रयोजन नहीं हैं। इनसे दूर ही रहने में भलाई है, वरना जो कोई इनमें फंसता है वह मारा जाता है और माया का जंजाल उसे फंसा लेता है। योगी हमेशा उसके शिकार हुये हैं। यह सिद्धि शक्ति माया ही का रूप है और यह केवल चित्त की वृत्ति के एकाग्र

होने और उस वृत्ति का किसी भौतिक या मानसिक वस्तुयें संयम करने पर स्वयं आ जाती हैं। उद्देश्य तो निज स्वरूप या सत का साक्षात्कार करना है।

वचन १२६

सुख कैसे मिलता है ?

चित्त की वृत्ति का किसी वस्तु में आरूढ़ होकर उसके साथ संयम कर लेने से प्राणी को सुख प्राप्त होता है। संयम करना वृति का टिकाना कहलाता है और जमी हुई वृति का टिकाव, जमाव या संयम के स्थान से हटाये जाने पर दुख होता है। राधास्वामी मत में सुख और दुख की परिभाषा और व्याख्या केवल इतनी है। इससे अधिक कहना विषय को बढ़ाना हैं। स्त्री में, खेल कूद में, सैर व तमाशे में, गाने बजाने साधन व अभ्यास में, परमार्थ और स्वार्थ में, जहाँ जहाँ और जब जब वृति ठहरेगी, वहाँ वहाँ उस उस समय सुख होगा और स्त्री, खेलकूद, सैर व तमाशे, गाने व बजाने, साधन अभ्यास, परमार्थ और स्वार्थ से जहाँ जहाँ और जब जब वृति का हटाव होगा, वहाँ वहाँ उस उस समय दुख होगा। इस वृति में हमारे अंदर की छाया रहती है जो धार के रूप में हमारे शरीर के रग रग और रेशा रेशा में चालू रहती है उसी से शारीरिक व्यवस्था चलती रहती है और दूर और निकट और बाहर और भीतर उसी की धार किसी न किसी केन्द्र पर ठहर जाती है और उस ठहराव में सुख होता है। जहाँ उस केन्द्र से वृति अथवा सुरज की धार हटी, उसी समय दुख होने लगता है।

आदमी बाग का तमाशा देख रहा है और खिले हुये फूलों से उसे आनन्द मिल रहा है, क्योंकि उसकी सुरत की धार अथवा वृति वहाँ ठहरी हुई है। उस आनन्द की अवस्था

में किसी ने आकर किसी प्यारे की मृत्यु की सूचना दी अथवा दूसरी कोई अप्रिय घटना प्रकट हुई, उसी समय सुरज की धार बाग के केन्द्र से हट गई और वही बाग काटने को दौड़ा और दुख का स्वरूप बन गया।

किसी आदमी ने अपनी सुरत लड़के पर लगा रक्खी है। लड़के के देखने से उसे आनन्द मिलता है। अब वह लड़का मर गया अथवा उसमें बीमारी आ गई या उसने दुर्व्यहार किया तो सुरत की धार उससे हटो और दुख प्रतीत होने लगा।

कोई आदमी शतरंज खेल रहा है। उसकी वृति मुहरों की चाल में अटकी हुई है और वह खुश है। जब तक उसमें वृति जोर के साथ जमी रहेगी वह खुश रहेगा। वृति को हटा दो और फिर दुख होगा।

इस तरह हर वस्तु के सुख को चाहे वह कोई ही क्यों न हो, वृति ही के ठहरने का परिणाम समझना चाहिये और उसी से हटाये जाने ही को दुख कहना चाहिये।

हमारे शरीर के स्वास्थ्य में, खाने पीने में और जागने में यही नियम दृष्टि में रहता है। जब तक वृति रग रग और रेशों रेशों के द्वारा शरीर के केन्द्र पर जमती रहेगी, तब तक सुख होगा और जब किसी घाव, चिरन या फोड़े फुंसी के कारण वह हटाई जायेगी तब तक दुख होगा। शरीर के कारण धार उस जगह आकर जल्द जल्द जोर से हटती रहती है। इससे कष्ट होता है यदि किसी तरह बात चीत में लगाकर वृति का रुझान किसी अन्य वस्तु की ओर मोड़ दिया जाये तो फिर यह दुःख प्रतीत न होगा अथवा दवा आदि लगाकर या खिलाकर उसे उस ओर से हटा दिया जाये तब भी वही दशा होगी।

दर्द से कराहता हुआ रोगी जो शोर मचाता है, केवल उस धार के बार बार हटाये जाने के कारण है। बात चीत शुरू कर दो ताकि सुरत या वृति दूसरी ओर हो जाय या कोई ऐसा उपाय करो कि उसे नींद आ जाय या बेहोशी हो जाय तो उसका कराहना बंद हो जाय।

बच्चों की वृति शीघ्र हट जाती है और शीघ्र एकाग्र होकर लग जाती है। इस कारण इन्हें इतना दुख नहीं होता, लेकिन वयस्क मनुष्य की वृति में दृढ़ता होती है, वह ऐसी आसानी से नही हट सकती। इस कारण से उसे दुख अधिक होता है।

यह जगत माद्दा का बना हुआ है। माद्दा क्षण क्षण में बदलता रहता है। इस कारण से माद्दा की दुनिया में माद्दी सामान से हमेशा ही वृति हटती रहती है और दुख का होना आवश्यक है। परिस्थितियों और प्रभावों में परिवर्तन होते हैं स्वयं बुद्धि तत्व भी इससे रहित नहीं है। इसलिये यहाँ इस मंडल में सुख के साथ दुख का बार बार होते रहना आवश्यक है। यह हमारे अधिकार की बात नहीं है। हम जब उसमें वृति लगायेंगे और वह हटा दी जायेगी तो दुखी होना पड़ेगा।

यह जागृत की घटनायें हैं। अब यदि स्वप्न में वृति ठहराई जाय तो वहाँ भी यही दशा होगी, क्योंकि मन एक हालत में रहने वाला नहीं है। सुरत की धार को अगर मन के मन्डल में ठहराया गया तो वहाँ से भी वृति हटाई जायगी अप्रिय परिस्थियाँ, घटनायें और प्रभाव स्वप्न की दुनियाँ में भी होते रहते हैं। आदमी बुरे स्वप्न देखता है। अभी हँसता है और अभी चीखमार कर चिल्ला उठता है। यह हर एक निज अनुभव है। इसलिये यह हालत भी वांछनीय नहीं है।

अगर कोई ऐसा यत्न हाथ लग जाये कि हम जब चाहें अपनी सुरत को अपने आप ऐसे केन्द्र पर ठहरा सकें जो अधिक परिवर्तनशील न हो और उसके ठहराने के अभ्यास में लग जाँय तो फिर हमको इतना दुखी होने का डर न रहेगा।

यह युक्ति सुरत शब्द योग है।

हम थोड़ा सा जानते हैं कि दुख अधिकतर वहाँ ही है, जहाँ मन और माया का सम्बन्ध है। अगर हम इनको पार करके वहाँ पहुँच जायें जहाँ आनन्द ही आनन्द है और सुरत को वहाँ ठहरादें तो फिर हमको दुख से छुटकारा हो जायगा।

यह आनंद संतों की शिक्षा के अनुसार सत पुरुष राधास्वामी के चरण हैं जो हमारे अपने अन्दर मौजूद हैं। वह आनंद का भंडार है। सबकी उत्पत्ति उनसे है वह पूर्ण आनंद है। उनके ध्यान ही से आनन्द प्राप्त होता है।

'हर प्राणी आनंद ही से उत्पन्न हुआ है', उपनिषद ऐसा कहते हैं। जिस प्रकार उस केन्द्र पर सुरत के ठहराने से आनंद की प्राप्ति होती है, उसी तरह चित्त और सत का प्राप्त होना ही सम्भव है, क्योंकि वही सत और चित का भी भंडार है और उसी नियम के अनुसार इनका भी ज्ञान होता है। सुरत ही की धार असल में जब हर तरफ से मुड़कर उस केन्द्र पर ठहर जाती है, तब ही हर प्रकार का ज्ञान मिलता है।

बचन १४५

धुर पद

सुरत शब्द योग के साधन करने से जो अन्तिम सीढ़ी आती है, संतों ने उसका नाम धुर पद रक्खा है। वह सबकी चोटी पर है। उसकी बावत वाणी आई है। शेष अगले अंक में

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
६—स्वत्वाधिकारी संरक्षक		श्रीमती सुधा मीतल परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र मीत्तल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्रीमती सुधा मीत्तल

ग्राहक संख्या— 170

श्रीमान् Sri Chilwar Narsimhlu
Hanmandhi, General Stores
V&PO Bamswada Mandal
Nizamabad- AP
503187

Regd. NO L—ALG.28

मनुष्य बनो

BANSWARA
D

अप्रैल
१९९२

क्षमा.

प्रेम.

निष्काम कर्म.

पालन.

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २५.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णं मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४१	अप्रैल १९९२	अङ्क—७

प्रेम धारा से :

शब्द

जिस पर दया गुरू की होई। उसको विघ्न न लागे कोई।
गुरु हुये जिसके रखवारे। उसका कुछ न काल बिगाड़े।
जा का गुरु चरण में बासा। उसका मन नहीं होये उदासा।
गुरु भक्ति लगे जिस प्यारी। वह अचिन्त गई चिन्ता हारी।
जाके शीश गुरु का हाथा। चमके चन्द्र सूरज उस माथा।
गुरु विश्वास किया जिस प्राणी। उसकी काल करे नहिं हानि।

गुरु दृढ़ता जिसके मन भाई। उसनें जीती सकल लोकाई।
उत्तम भाग्य मिले गुरु पूरे। 'गाफिल' पूरण होये अधूरे।

अनमोल बचन

प्रार्थना

मैं तुमसे क्या माँगू ! तुम्हारे पास है क्या ! तुम सब दे दिला कर खाली हाथ दिखलाई देते हो। कहते हैं तुम सब कुछ हो और कुछ भी नहीं। तुम मन और बुद्धि की पहुँच से बहुत दूर हो। फिर मैं माँगू भी तो कैसे माँगू ? और क्या माँगू ? मुक्त और स्वतन्त्र से उसकी मुक्ति और स्वतन्त्रता माँगना अच्छा नहीं। धनवान से उसके धन लेने की इच्छा रखना व्यर्थ ही है। इसके सिवा जब मैं विचार करता हूं तुम में धन, द्रव्य, बल और शक्ति कुछ नहीं पाता। तुमने लक्ष्मी विष्णु को दे दी। लक्ष्मी विष्णु की अर्द्धांगिनी है। मैं कैसे कहूं कि तुम मुझको लक्ष्मी दो ! मैं विष्णु के साथ युद्ध करना नहीं चाहता। तुमने शक्ति और बल शिव भगवान को दे दिया है। शक्ति उनकी स्त्री है। मैं कैसे कहूं कि मुझे शक्ति दो ! यह बहुत बड़ी ढिठाई और असभ्यता होगी। मैं कैसे कहूं कि तुम मुझको विद्या और बुद्धि दो ! विद्या और बुद्धि का नाम गायत्री और सावित्री है। यह ब्रह्मा की स्त्रियां हैं। ब्रह्मा यों ही चार मुँह आठों आँखों से चारों ओर देखते रहते हैं। उन को क्रोध दिलाना मूर्खता है। और फिर बड़े बूढ़े भी ठहरे। इसका भी तो ध्यान रखना ही पड़ता है। मैंने बहुत अच्छी तरह से सोच लिया तुम ने सब कुछ औरों को दे दिला कर आप सबसे अलग थलग हो गये। तुम्हारे पास कुछ नहीं है इस लिये तुमसे माँगना भी अनसमझी की बात है। ढिठाई और अपराध क्षमा करो। मैं कुछ नहीं माँगता और न माँगने के अभिप्राय से

तुम्हारे पास आया हूं। हाँ, यदि तुम यह समझते हो कि मेरे पास कुछ है तो वह ले लो। यह सब तुम पर न्योछावर है। मैं स्वयं तुम पर न्योछावर होता हूं। मेरी निर्धनता, मेरी बेबसी, मेरी मूर्खता और दीनता यदि तुम्हारी दृष्टि में कुछ भी मूल्य रखती हूं तो इन्हें मैं प्रसन्नता से तुम्हारे पवित्र चरणों में अर्पण करता हूं। इनको स्वीकार करो। मेरे मन के भावों को, पुरुषार्थ और उत्साह को, मेरे देखने, सुनने, बोलने और समझने बूझने की शक्तियों को और इनके सिवा और भी जो कुछ है वह लेकर अपना बना लो। मुझको इनकी आवश्यकता नहीं है। यदि यह तुम्हारे अर्पण और समर्पण हो जायें तो मैं अपने आपको बड़ा ही भाग्यवान समझूंगा। धन, द्रव्य, बल शक्ति, विद्या बुद्धि यह मेरे पास नहीं है परन्तु यदि इनके लिये कुछ भी इच्छा मन में हो तो वह भी तुम ही ले लो। मुझको इनकी भी आवश्यकता नहीं है।

लोग कहते है तुम सत् हो, चित्त हो, आनन्द हो, केद्ध हो, मुक्त हो, बुद्ध हो। इन सारे गुणों को भी अपने पास रक्खो। शुद्धता मुक्तपना, बुद्धपना, इनमें से भी मुझको किसी की इच्छा नहीं है। जो तुम्हारा है वह तुम्हारे ही पास रहे और यदि मैं भी तुम्हारा ही हूं तो जानते ही हो कि जो जिसका है वह उससे दूर कब रह सकता है इसलिये मैं नहीं समझता कि तुम से मांगू भी तो क्या मांगू! परन्तु न माँगना भी ढिठाई और अनुचित है। इन बातों को विचार कर मैं तुमसे माँगता हूं :—

भिक्षा

हम आये ! आये !! आये !!!
आज तुम्हारे द्वार पर, प्रभू भिक्षा माँगन आये (टेक)
क्या मांगू कुछ थिर न रहाई। सुत धारा धन अगमा पाई ।।

इनसे रहूँ नित चित्त हटाई । माँगत मन अति रहत लजाई ॥
यह हृदय नहिं भाये ॥
रूप अनूप तुम्हारा देखा । मिट गया काल कर्म का लेखा ॥
सब का सब विधि किया परेखा । प्रेम प्रीति का यही बिसेखा ॥
नयनों जल भर लाये ।।२॥
माँगत गये सो लौटे नाहीं । भर्म रहे माया परछाईं ॥
मन में पड़ गई काल की झाईं । बिनती सुनो हमारी साईं ॥
हम तो रहे सकुचाये ॥३॥
जिव्हा थकित थकित मन काया । दर्शन पाय जिया ललचाया ॥
पद सरोज की दीजे छाया । व्यापे काम क्रोध नहिं माया ॥
हित चित से रहूं अज्ञाकारी । निख सिख उर में बसो हमारी ॥
तुम हो दीनबन्धु हितकारी । राधास्वामी चरन शरन बलिहारी ॥
लो अब अंग लगाये ॥

—०—०—

धन्यवाद

श्री गुरुचरन लाल कुशवाहा ने अपनी माता जी के स्वर्गवास पर आयोजित सतसंग में रावतपुर सतसंगीयों द्वारा एकत्रित धनराशि १०१) रु० मनुष्य बनो की सहायतार्थ भेजी है । हम मालिक से सबको शान्ती की कामना करते हैं ।

श्रीमती डा० सरस्वती अग्रवाल फगवाड़ा ने मनुष्य बनो की सहायतार्थ २०१) रु० एवं श्री लडैते लाल कन्नौज ने २६) रु० भेजा है । हम आप सबकी मालिक से सुख समृद्धि की कामना करते हैं ।

—प्रकाशक

आप स्वयं एक देवता हैं

मनुष्य में सब देवताओं का निवास है। विधाता ने मनुष्य के शरीर में देवत्व की सब गुंजाइशें भर दी हैं। देवताओं में प्रस्तुत सब सद्गुणों का भन्डार मानव शरीर में है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने जो जीवन व्यतीत किये थे, वे ऐसे थे कि जिनमें देवताओं के तत्व प्रत्यक्ष प्रकट थे।

इस भूमि में जो स्वर्ग भरा हुआ है, जो जो दिव्य विशेषतायें हैं, यदि उनके लिए आप हृदय के द्वार खोल दें तो आपका देवत्व बिकसित हो सकता है। भारत-भूमि देवताओं की पवित्र भूमि है। इसके कण-कण में देवत्व भरा हुआ है। आप भारत-भूमि में जन्में हैं अतएव अपने को परम भाग्य-शाली समझिये।

वास्तव में शरीर की अधिक महत्ता नहीं है। राक्षस और देवता दोनों के बाह्य शरीर में एक से ही अवयव होते हैं। हमारी आन्तरिक भावनाएँ, सद्गुण, सात्त्विकता और पवित्रता ही हमें देवत्व की ओर अग्रसर करती है। हमारी अच्छाइयों का सम्बन्ध देवत्व से है। श्रवणकुमार, प्रहलाद, ध्रुव इत्यादि मानव शरीर में देवता ही थे। कहते हैं कि एक बार श्रवण अपने माता पिता को टाँगे-टाँगे—लादे-लादे थक गया। उसने क्रोधित होकर माँ बाप को उतार देना चाहा। उसके पिता ने कहा कि कुछ और आगे ले चलो श्रवण कुमार जैसे ही कुछ आगे बढ़ा, उसके हृदय में देवत्व का प्रादुर्भाव हुआ। उसे अपनी गलती मालूम हुई और उसने अपने पिता से बार-बार क्षमा माँगी। उसके पिता दिखाना

चाहते थे कि एक पुत्र पिता के लिये क्या-क्या कर सकता हैं हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, कर्ण इत्यादि हमारे लिये प्रकाश स्तम्भ हैं ।

इस भारत भूमि के अतीत कालीन इतने दिव्य संस्कार फैले पड़े हैं इसका अतीत इतना उज्जवल है कि यदि आप अपना हृदय उसके लिये खोल दें, तो निश्चय जानिये आप में जरूर देवत्व के गुण प्रकट होंगे। आपकी सात्विकता और पवित्रता निरन्तर प्रकाशित होगी, आप ऊँचे उठते रहेंगे और राक्षस तत्त्व से मुक्त होते रहेंगे ।

देवताओं की प्रथम विशेषता है, वे (देव अर्थात् देने वाले) —सदैव देने वाले, दान करने वाले हैं। यह देना (या दान) अनेक प्रकार का हो सकता है। श्रम, धन, स्नेह, प्रेम, करुणा सहानुभूति, आश्रय आदि देना। देवता भावनाओं से परिपूर्ण हैं। देवताओं की पूजा करने से वे प्रसन्न होते। वे कम लेते हैं, अधिक से अधिक देते हैं। यदि हम भी समाज से कम से कम लेकर अधिक से अधिक दें तो हम देवता बन सकते हैं। हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि, ज्ञानी-संत-महात्माओं में कमाने की असंख्य योग्यतायें थी और उनसे वे बहुत धन प्राप्त कर सकते थे। लेकिन उन्होंने लिया नहीं, त्याग किया। उन्होंने शेष आयुपर्यन्त कुछ न कुछ दिया, यहाँ तक कि सर्वस्व दे डाला। ऐसे श्रमी, दानी, उदार महात्मा मानव शरीर में देवता ही थे।

गायत्री का 'देवस्य' हमें यह शिक्षा देता है कि हम कम-से-कम लें और अधिक से अधिक प्रदान करें। हम समाज की अधिक से अधिक सेवा करें और आय के रूप में कम से कम लें अधिक लेना स्वार्थ का प्रतीक है। अधिक लेना संकुचितता

है, निर्बलता है और राक्षसत्व की ओर पतन है।

देवताओं की दूसरी विशेषता यह है कि वे स्वर्ग में रहते हैं। तो क्या आप भी स्वर्ग में निवास कर सकते हैं? हाँ, आप रह सकते हैं। इमरसन लिखते हैं कि 'यदि मुझे नरक में भी रहना पड़ा तो अपने स्वभाव से नरक को भी स्वर्ग बना लूँगा।' वास्तव में अपने स्वभाव की उदारता, मधुरता, अच्छाई के कारण हम स्वर्ग को सृष्टि कर सकते हैं। यदि हम दूसरों पर विश्वास करें, प्रेम करें, दिखलायें, ऊँचा उठायें अच्छाइयाँ बढ़ावें तो विश्वास रखिये आपका देवत्व जरूर विकसित होगा। प्रेम और अच्छाइयों के विकास से बिगड़े हुए, पथ भ्रष्ट भी सुपथ पर आ जाते हैं। सद्व्यवहार का गहरा प्रभाव पड़ता है। सद्भावनायें जैसी जाती हैं, दुगुनी चौगुनी होकर देने वाले के पास लौटाती हैं। वे चारों ओर पवित्र वातावरण की सृष्टि करती हैं। आपकी सद्भावनायें और सद्व्यवहार आपके अन्दर व्याप्त दैवी तत्त्व के प्रतीक हैं। इनका विकास प्रतिदिन के अपने सत्कर्मों द्वारा करते रहें।

हमारे अन्दर अच्छाइयों का भण्डार भरा पड़ा है। हमारी तरह अन्य मानवों में भी सद्गुण भरे हैं। यदि हम अपने अन्दर देवत्व को विकसित कर लें तो अन्य व्यक्ति भी हमारे अनुकरण पर अपनी सात्त्विकता और पवित्रता का विकास करेंगे। हम सब सात्त्विकता और पवित्रता के सद्व्यवहार से एक अच्छे वातावरण की सृष्टि करते हैं। हमारा यह कर्तव्य है कि इस दिव्य वातावरण की परिधि का निरन्तर विस्तार करते रहें। जितने अधिक व्यक्ति हमारे इस बातावरण के अन्तर्गत आयेंगे, उतने अधिक वे गुप्त रूप से देवत्व का

विकास कर सकेंगे।

देवता अमर होते हैं। हम भी अमर बन सकते हैं। जिस व्यक्ति की सत्-कीर्ति अमर हैं वह शरीर रूप से न सही आत्मिक रूप से अजर-अमर है। बुद्ध, गाँधी, ईसा क्या मर गये ? नहीं, अपनी कीर्ति के कारण अमर हैं। उनकी कीर्ति अक्षय है। वे सदा अमर बने रहेंगे। यदि हम भी अपने सत्कार्यों की वृद्धि करें तो देवत्व का विकास कर सकते हैं।

जो शरीर के लिये जीते हैं वे मरते हैं। जो पेटू होते हैं, वे मरते हैं। जो शरीर की खुजली मिटाने और भोगों की तृप्ति के लिये जीते हैं, वे निकृष्ट जीवन व्यतीत करते हैं। उस आदमी को मौत आती है, जो दूसरों का शोषण करता है हिंसा करता है या दूसरों का हृदय दुखाता है। इन्द्रिय-तृप्ति तो पशु भी करते हैं, उदर एवं कामेन्द्रियों की क्षुधा वे भी तृप्त करते हैं। यदि हम इसी गंदगी के नीचे जीवन में फँसे रहें तो हम पशुत्व की कोटि में ही रहते हैं। यह निकृष्ट जीवन मानव के लिये अशोभनीय है।

देवता वृद्ध नहीं होते, सदा युवक बने रहते हैं। अक्षय यौवन उनकी विशेषता है। उनकी विशेषताओं का जो सौन्दर्य है, वह उन्हें युवक बनाता है देवता हँसता है, मधुर मुस्कान उसके मुख पर खेलती रहती हैं। मृत्यु तक से वह मुस्करा कर व्यवहार करता है। मृत्यु हमारा अन्तिम अतिथि है। जो व्यक्ति निराशा की भावना से मुक्त हैं, उदासी जिनके पास नहीं आती, जो प्रफुल्ल हैं वे ही देवता हैं।

प्रेषक : महेशचन्द्र

—०—

॥ मनुष्य बनो ॥

नहीं खालिक मखलूक न खलकत।
करता कारण काज न दिक्कत॥
दृष्टा दृष्टि नहिं कुछ दरसत।
वाच्य लक्ष नहीं पद न पदारथ॥
जात सफात न अव्वल आखिर।
गुप्त न परगट बातिन जाहिर॥
राम रहीम करीम न केशो।
नहिं कुछ नहिं कुछ नहिं कुछ था सो॥
स्मृति शास्त्र न गीता भागवत्।
कथा पुराण न वक्ता कीरत॥
सेवक सेव न दास न स्वामी।
नहिं सतनाम न नाम अनामी॥
कहाँ लग कहूँ नही था कोई।
चार लोक रचना नहिं होई॥
जो कुछ था सो अब कहं भाखूं।
उनमुन सुन विसमाधी राखूं॥
हैरत हैरत हैरत होई।
हैरत रूप धरा इक सोई॥
उनमन रूप सदा वह धरता।
उनमुन दशा सदा वहि बरता॥

इसी धुर पद की प्राप्ती के लिये साधन की शिक्षा है। यह अंत है और सब बीच की श्रेणियाँ हैं।

वचन १४६

शिक्षा का स्पष्टीकरण

अभ्यास का प्रारम्भ स्थूल व सूक्ष्म मंडल के साथ होता है, जहाँ तीन गुण, पाँच तत्व, पच्चीस प्रकृति, चौरासी लक्ष आदि

के कारोबार हैं। यह स्थूल मंडल ज्योति निरंजन (विराट) और ओंकार पुरुष (अव्याकृत्य) की रचना में है। एक स्थूल है दूसरा सूक्ष्म है। इसके परे द्वैत का मंडल है जो सुन्न स्थान (हिरण्य गर्भ) से शुरू भँवर गुफा तक समाप्त हो जाता है यह पुरुष और प्रकृति के महा सूक्ष्म कारण का स्थान है। पुरुष स्त्री के लक्षण त्रिकुटी (ओ३म्) तक हैं। यहाँ पुरुष और प्रकृति का मिलाप अत्यन्त सूक्ष्म रूप में है जिसको पहिचान कठिनता से होती है। स्थूल सूक्ष्म या अनेकता बहुवाद है, यह द्वैतबाद है। सून्न और महा सुन्न स्थान के पहुँचे हुये अभ्यासी द्वैतवाद को अपने अंदर रखते हुये हंस गति को प्राप्त होते हैं और भँवर गुफा में आकर वह परम हंस होते हैं, जहाँ पुरुष स्त्री का कोई भेद नहीं रहता। भंवर गुफा तक काल और माया की सीमा है। इसके परे सत पद में केवल सत्ता मात्र होती है यहाँ से संत गति की प्राप्ति होने लगती है यह स्थान शुद्ध अद्वैत का है। जब तक यहां पहुच नहीं हो लेती तब तक असली या क्रियात्मक अद्वैत वाद का अनुभव होना सुगम काम नहीं है। बाणी और बुद्धि से चाहे जितनी बातें बनाई जायें, लेकिन उस पद का साक्षात्कार नही होता। जब अनुभवी सुरत इस स्थान तक पहुच लेती है, तब वह सच्ची अद्वैत कहलाती है और यह संतों का गुण है। इसके तै करने पर परम संत गति होती है अर्थात उस समय सूक्ष्म अद्वैत वाद का प्रभाव मिट जाता है। जब यह अवस्था आ लेती है, तब वही धुर पद कहलाती है जिसे संत राधास्वामी धाम कहते हैं।

सूफियों में सात स्थान और सात अवस्थाओं का नक्शा इस तरह दिखाया गया है। (१) शौक और तलब (२) इश्क (३) तौहीद (४) मारफत (५) इस्तग्ना (६) फना और (७) बका इनका अभिप्राय वही है जो संतों के स्थानों के तै कराने से है।

शब्दों में अटकने से शिक्षा का सार समझ में नहीं आता। तत्व बात पर दृष्टि रखने से असलियत का पता मिलता है। इन अवस्थाओं की प्राप्ति नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत, हूत, व्हेत और हूतलहूत के स्थानों पर पहुँचने से सम्भव है, जो सबके सब मनुष्य के मस्तिष्क में है और सुरत शब्द योग का साधन उनकी प्राप्ति में सहायक होता है।

जिज्ञासु में पहले 'शौक' (रुचि) तलब (इच्छा) के भाव होना आवश्यक है। यह अधिकार और संस्कार का लक्षण होना आवश्यक है। यह अधिकार और संस्कार का लक्षण है। फिर इसी रुचि के बढ़ने का नाम इश्क (प्रेम) है। 'इश्क' (प्रेम) का प्रयोजन दर्शन और मिलन है और यह अद्वैत में आकर पूर्ण होता है जहां ध्यान के साधन से प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों मिलकर एक होते हैं। इस मिलाप का परिणाम 'मारफत' (ज्ञान) है। जब तक वृति प्रेमास्पद से मिलकर उसका रूप धारण नहीं कर लेती है,तब तक ज्ञान का होना सम्भव नहीं होता है। ज्ञान हो जाने पर फिर अभ्यासी में इस्तगना (बेपरवाई) आने लगती है,जिसे संस्कृत में उदासीनता कहते हैं और वह निस्वार्थता और निस्सम्बन्धता है। यह वृति साधन करते रहने से फना' में बदल जाती है अर्थात समाधि होजाती है। यहो असली जीवन कहलाता है, जो संतों का सत पद है। यहाँ तक का पता सूफियों की बाणी से लगता है। संतों ने इससे आगे के स्थानों का पता दिया है ताकि इस सत्ता के ज्ञान का भी प्रभाव न रहे और सूक्ष्म से सूक्ष्म अद्वैत तक का विचार न आने पावे। यह पूर्ण अवस्था है और यही इष्ट पद है। इस स्थूल शरीर के रहते हुए भी यह सम्भव है। इसे असली निर्वाण कहते हैं। संतों का निर्वाण बुद्धों या जैनियों अथवा वेदान्तियों के निर्वाण से भिन्न है बौद्ध तो बुद्धि तत्व में जाकर लय हो जाते हैं और बुद्धि ही को सब

कुछ समझते हैं। जैनी भी इसी में रहते हैं और ईश्वर पद को प्राप्त करते हैं वेदान्ती ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मांडो मन (ओ३म्) या प्रणव) को सब कुछ मानकर उसी को अपना इष्ट नियत करते हैं। संतों का इष्ट इन सबसे भिन्न है। वह साधन से इस प्रकार का निर्वाण प्राप्त करते हैं कि सब भाव चाहे वह देह के हों या मन के हों या बुद्धिके हों पूर्णतया नाश हो जांय। बुद्धि तक का सम्बन्ध न रहे। निर्वाण का अर्थ संस्कृत में फूंककर हटा देना है। अन्तिम श्रेणी अर्थात् राधास्वामी धाम में पहुँचकर सब भाव जल जाते है और केवल वह रह जाती है जिसे धुर पद के बचन (१४५) में वर्णन किया गया है। यह संतों का निर्वाण है।

बचन १४७

कर्म

कर्म भला है और कर्म बुरा है। बुरा कर्म नरक को ले जाता है। भला कर्म स्वर्ग तक पहुँचाता है। नर्क और स्वर्ग की प्राप्ति केवल मन की कल्पना है जो चिदाकाश में प्राप्त होती है। मनुष्य जिस प्रकार के कर्म करता है, उसी प्रकार के संस्कार उसके चित्त में पैदा होते हैं और यह संस्कार इसके आन्तरिक भावों को प्रेरित करके एक विशेष अवस्था में स्थिर कर देते हैं। कर्म करने वाले में विशेष प्रकार की योग्यता आती है जो उसके भावी स्थान का अर्थात् रहने के स्थान का निर्णय कर देती है। जिस व्यक्ति में जैसी योग्यता होगी, वह उसी के अनुसार अवस्था, हैसियत और स्थान प्राप्त कर लेगा यह प्रकृति का नियम है।

जिस प्रकार जाग्रत के कर्म स्वप्न अवस्था में फुरते हैं और

सोने वाले को सुख दुख देते हैं, वैसे ही जीवन के समाप्त हो जाने पर उसकी आत्मा (सूरत) चिदाकाश में पहुँचकर कर्मों के अनुसार बुरी या भली हालत में रहने के लिये विवश होगी इन्हीं का नाम नर्क और स्वर्ग है। इसके सिवा वह और कुछ नहीं है। वह स्थान अवश्य हैं, क्योंकि जीव को सूक्ष्म से सूक्ष्म शरीर रखने पर किसी न किसी जगह रहना ही पड़ता है। जब तक भले और बुरे कर्म रहेंगे नर्क और स्वर्ग में अवश्य ही जाकर दुख और सुख भोगना पड़ेगा। यह नियम है। कर्मों के दग्ध होने पर लामकानियत या देश के बन्धन छुटने का अधिकार प्राप्त होता है। अभ्यासी के कर्म कई तरह पर कटाये जाते हैं। कुछ तो वह शारीरिक रोग और मानसिक दुखों के रूप में भोगकर समाप्त करता है और कुछ मन के मन्डल में अभ्यास के समय भोगे जाते हैं। कर्म का भोग अनिवार्य है। उपनिषद का कथन है कि जो भले या बुरे कर्म मनुष्य करता है वह भोगने पड़ते हैं।

हाँ अभ्यासी में चूंकि वृति एकाग्र होती है, यह आसानी से भोगे जाते हैं। औरों को कष्ट उठाना पड़ता है। चित्त की एकाग्रता से चित्त में विशेष प्रकार की बिजली पैदा होती हैं जो कर्मों के संस्कारों को जलाती रहती है। इस तरह उसके कर्म भोगाये जाते हैं। यदि यह कर्म न कटेंगे तो वह किसी सूरत में आत्मिक स्थानों को पार करने के योग्य न होंगे।

जो व्यक्ति जिस प्रकार के कर्म करेगा,उनका प्रभाव उसके अन्तर सुरक्षित रहेगा और सहायता पाकर उभर आयेगा। बुरे या भले कर्मों का करने वाला स्वप्न में वैसे ही स्वप्न देखता है। बीमारी की बेहोशी में, वैसी ही बातें करने लगता